उपसंहार

उपनिषद वह चिर प्रदीप्त ज्ञानदीपक है जो सृष्टि के आदि से प्रकाश देता चला आ रहा है और लय पर्यन्त प्रकाशित करता रहेगा । विश्व के समस्त मानव समाज को नव चेतना देकर आत्यन्तिक शांति प्रदान करने का श्रेय उपनिषदों को है ।

भारतीय धर्म एवं दर्शन का चरमोत्कर्ष उपनिषदों में ही प्राप्त होता है । आत्मा क्या है वह कहां रहता है ? मरने के बाद आत्मा का क्या होता है ? आदि प्रश्नों का विशद विवेचन यहाँ उपलब्ध होता है और सम्भवतः इसीलिए यह सामान्य धारणा बन गई है कि उपनिषद का वर्ण्य विषय मात्र आत्मविद्या या ब्रह्म विद्या है परन्तु उपनिषदों के गहन अध्ययन एवं सूक्ष्म विश्लेषण से यह तथ्य हमारे समक्ष प्रगट होता है कि उनमें ब्रह्म विद्या के साथ दृश्यमान नानाविध सृष्टि,जीव एवं अन्य रहस्यात्मक तत्त्वों की दार्शनिक व्याख्या भी की गई है । सृष्टि प्रक्रिया के इस दार्शनिक विवेचन को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में औपनिषद मान्यताओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

यद्यपि उपनिषदों की संख्या अनन्त है, तथापि ईश, केन, कठ, मुण्डक, प्रश्न, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य एवं श्वेताश्वतरोपनिषद - इन ग्यारह उपनिषदों का दार्शनिक दृष्टि से विशेष महत्त्व स्वीकार किया है । अतः इस शोध प्रबन्ध में उक्त ग्यारह उपनिषदों के ही अध्ययन का मुख्य आधार बनाया गया है ।

भिन्न-भिन्न उपनिषदों में सृष्टि का कारण, प्रयोजन एवं क्रम भिन्न-भिन्न उपलब्ध होता है परन्तु सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह तथ्य उद्घाटित होता है कि बाह्य भिन्नता के होने पर भी उनमें अभिन्नता विद्यमान है । सृष्टि के कारण के रूप में एक ही अनिर्वचनीय सत्ता के विविध

नाम उपलब्ध होते हैं किन्तु तात्त्विक दृष्टि से वे एक ही परमशक्ति को इङ्गित करते हैं । कहीं उसे आत्मा अभिहित किया गया है तो कहीं ब्रह्म कहीं उसे "सत्" की संज्ञा दी गई है तो कहीं हिरण्यगर्भ या प्रजापति एवं कहीं प्राण या रयि भी कहा गया है । यह आश्चर्य का विषय है कि इन सबका स्वरूप एक जैसा ही प्राप्त होता है क्योंकि एक वस्तु का अनेक रूप में व्याख्यान करना विद्वानों की विशेषता है - "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" । इस बहुधा विवेचन के परिणाम स्वरूप औपनिषद ज्ञान - पयस्विनी से अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ तथा उन्होंने स्व-स्वमतानुसार उपनिषदों तथा उन्होंने का प्रतिपाद्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया ।

वेदों के संहिता भाग एवं ब्राह्मण भाग में विवेचित सृष्टि-प्रक्रिया में ही उपनिषदों में प्रतिपादित सृष्टि-प्रक्रिया के सूत्र उपलब्ध होते हैं । डा० राधाकृष्णन् का विचार है कि भारतीय दर्शन की प्रत्येक धारा के बीज ऋग्वेद में विद्यमान हैं वेद में सृष्टि से पूर्व की अवस्था से लेकर उसकी उत्पत्ति के क्रमिक विकास का विस्तृत चित्रण किया गया है जिसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब उपनिषदों की चिन्तन धारा पर भी पड़ा है । ऋग्वेद का "नासदीय - सूक्त" सृष्टि से पूर्व की अवस्था को जिस अद्भुत एवं दार्शनिक ढंग से व्याख्यायित करता है उसे विश्व के दार्शनिक इतिहास में एक अभूतपूर्व व्याख्या कहा जा सकता है । ब्राह्मणग्रन्थों में इसी बीज-भूत सिद्धान्त का नानाविध पल्लवन हुआ है । आधुनिक युग के व्याख्याता विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय का पुनः पुनः अवगाहन करके यह निर्णीत सिद्धान्त प्रतिष्ठापित किया है कि प्राक् औपनिषत् सृष्टि - प्रक्रिया ही उपनिषदों की सृष्टि - प्रक्रिया/ही उपनिषदों की आधार शिला है ।

मुख्य उपनिषदों महासिन्धु में सृष्टि के परमकारण की गवेषणा करते हुए जो मोती उपलब्ध होता है वह यह है कि उपनिषदों में प्रधानतया ब्रह्म अथवा आत्मा को ही सृष्टि का परम कारण स्वीकार किया गया है । यहाँ शंका सम्भावित होती है कि तत्त्व-स्वरूप ब्रह्म अथवा आत्मा

सृष्टि का परम कारण कैसे हो सकता है क्योंकि वह स्वयं निर्विकार एवं निष्क्रिय है अतः उससे सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? इस शङ्का का समाधान आचार्य शंकर ने माया के सिद्धान्त द्वारा किया है । माया ब्रह्म की अनादि शक्ति है और इस माया के कारण ही ब्रह्म द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति सम्भव है । ऐतरेय, ईश, केन एवं बृहदारण्यकोपनिषद में आत्मा को सृष्टि का परमकारण अङ्गीकार किया गया है । ऐतरेयोपनिषदनुसार सृष्टि उत्पत्ति में आत्मा उपादान एवं निमित्त कारण दोनों हैं, ईशोपनिषद, केनोपनिषद एवं बृहदारण्यकोपनिषदनुसार आत्मा सृष्टि का निमित्त कारण है । प्रश्नोपनिषद में प्रजापति को सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारण बतलाया गया है । कठोपनिषद में परमेश्वर [ब्रह्म] को सृष्टि-उत्पत्ति में निमित्त एवं उपादान कारण निरूपित किया गया है । तैत्तिरीयोपनिषद, मुण्डकोपनिषद एवं छान्दोग्योपनिषद की मान्यता है कि सत् संज्ञक ब्रह्म ही सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारण है, दूसरी ओर माण्डूक्योपनिषद ने "प्राज्ञ" को तथा श्वेताश्वतरोपनिषद ने "रुद्र" संज्ञक ब्रह्म को सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारणत्व कोरण माना है । उपनिषदों के इस ब्रह्म-कारणत्व के सिद्धान्त के आधार पर आचार्य शंकर ने अपने अद्वैत मत की व्याख्या करते हुए ब्रह्म को जगत् का उपादान एवं निमित्त कारण स्वीकार किया है । सांख्य में पुरुष एवं प्रकृति के आधार पर सृष्टि के परमकारण की जो व्याख्या की गई है तथा शैव मत में रुद्र [शिव] की सृष्टि के परमकारण के रूप में जो विवेचना की गई है, उन सभी मान्यताओं के बीज भी उक्त उपनिषदों में उपलब्ध होते हैं ।

मुख्य उपनिषदों में निर्दिष्ट सृष्टि के प्रयोजनों के आधार पर उनका वर्गीकरण चतुर्विध किया जा सकता है :-

प्रश्न, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य एवं बृहदारण्य-कोपनिषद में आत्मा अथवा परमात्मा के ईक्षण [कामना अथवा संकल्प] को सृष्टि का प्रयोजन स्वीकार किया गया है । परमतत्ता के एक से अनेक होने की कामना को आधार बना कर उक्त उपनिषदों में से कतिपय उपनिषदों

ने "तपस्" अथवा "तप" के महत्व का भी प्रतिपादन किया है ।

ईशावास्य, श्वेताश्वतर, कठ एवं मुण्डकोपनिषद् में जीव के कर्मफल की संप्राप्ति को ही सृष्टि का प्रयोजन माना गया है । शुभ एवं अशुभ कर्मों के सुख-दुःखादि फलों की विस्तृत परम्परा जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त अन्य कर्मों का विस्तार करती जाती है, फलतः सृष्टि-चक्र का प्रवाह अबाधित गति से चलता रहता है ।

केन तथा ईशावास्योपनिषद् में परमात्मा के सामर्थ्य प्रदर्शन को भी सृष्टि का प्रयोजन स्वीकार किया गया है । इस अद्भुत एवं सर्वथा विलक्षण सृष्टि को देखकर इसके रचयिता की परम शक्तिमत्ता एवं सामर्थ्य का ज्ञान होता है ।

माण्डूक्योपनिषद् पर गौडपाद कारिका में ईश्वर के स्वभाव को ही सृष्टि का प्रयोजन स्वीकार किया गया है । एवं सृष्टि के प्रयोजन के सम्बन्ध में मुख्य उपनिषदों में विविधमतों का दर्शन होता है ।

मुख्य उपनिषदों में लोक विभाग एवं स्थूल शरीरमय जीव-विभाग का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । यह एक और महत्वपूर्ण तथ्य है कि लगभग प्रत्येक मुख्य उपनिषद् ने स्वतन्त्र रूप से भिन्न-भिन्न लोकों की चर्चा की है, उनमें यत्किंचित् सत्तासाम्य भी उपलब्ध होता है । मुख्य उपनिषदों में वर्णित लोक इस प्रकार है - 1. इहलोक (मनुष्यलोक, मृत्युलोक, भूः, मर), 2. स्वर्गलोक (अम्भ), 3. भुवःलोक 4. देवलोक 5. अन्तरिक्षलोक (चन्द्रलोक, सोमलोक, मरीचि, भुवः एवं आदित्यलोक), 6. द्युलोक 7. ब्रह्मलोक, 8. सूर्यलोक 9. पितृलोक 10. चन्द्रमा एवं सूर्य द्वारा पवित्रलोक, 11. सप्तलोक 12. असूर्यलोक 13. आपः । इन लोकों में इहलोक, स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा ब्रह्मलोक - ऐसे हैं जिनका मुख्य उपनिषदों में अधिक वर्णन आया है । इहलोक को ऐतरेयोपनिषद् ने "मर" की संज्ञा दी है क्योंकि यह

मरणशील प्राणियों से युक्त है । तैत्तिरीयोपनिषद् ने इसे "भूः", छान्दोग्योपनिषद् ने पृथ्वीलोक तथा बृहदारण्यकोपनिषद् ने मनुष्यलोक की संज्ञा दी है । बृहदारण्यकोपनिषद् की मान्यता है कि मनुष्यलोक सम्बन्धित व्यवहार का मुख्य साधन वाणी है, अतः "मनुष्यलोक को वहाँ "वाक्" शब्द से अभिहित किया गया है। कठोपनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद्में "स्वर्गलोक" को कर्म से प्राप्य एवं नाशवान् माना गया है जबकि केनोपनिषद् में वर्णित स्वर्ग पुनरावर्तन शून्य एवं अनन्त सुख से समन्वित होने के कारण ब्रह्मलोक का ही पर्याय प्रतीत होता है । "प्रश्नोपनिषद्" में "अन्तरिक्ष" लोक को चन्द्रलोक की संज्ञा देते हुए उसे इष्टा पूर्तरूप कर्ममार्ग द्वारा उपलब्ध माना गया है । ऐतरेयोपनिषद् में उक्तलोक को "मरीचि" तथा तैत्तिरीयोपनिषद् में "भुवः" नामान्तर से अभिहित किया गया है । छान्दोग्योपनिषद् में इसे "आदित्य-लोक" कहते हुए आदित्यों एवं विश्वेदेवों के अधीनस्थ स्वीकार किया गया है । कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद् में जितका ब्रह्मलोक के रूप में वर्णन हुआ है उसे प्रश्नोपनिषद् ने तुर्यलोक की संज्ञा दी है । केनोपनिषद् का "स्वर्गलोक" अपने लक्षणों के आधार पर ब्रह्मलोक में ही अन्तर्भावित किया जा सकता है । एवं मुख्य उपनिषदों में वर्णित लोक विभाग नानाविध मान्यताओं से समलङ्कृत है ।

उपर्युक्त लोकों में मात्र इहलोक एवं स्वर्गलोक को आधार बना कर ही विवेच्य उपनिषदों में स्थूलशरीरमय जीव-विभाग सामान्यतया का वर्णन किया गया है । यह जीव-विभाग सामान्यतया चार प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है - 1. देव एवं असुर 2. मनुष्य 3. पशु 4. पक्षी । ईशावास्योपनिषद् में जीवों की उत्पत्ति व उनके प्रकार का विशेष उल्लेख नहीं है केवल "भूतानि" आदि शब्दों के द्वारा जीवों को संकेतित किया गया है ।

केनोपनिषद् में केवल स्वर्गलोक के जीवों का उल्लेख हुआ है और वहाँ देवों के साथ-साथ यक्ष [देव विशेष] का भी वर्णन आया है ।

कठोपनिषद् का सृष्टिक्रम बीजरूप अव्यक्त से आरम्भ होता है । अव्यक्त से क्रमशः हिरण्यगर्भ, लिङ्ग शरीर, तृष्णा, बुद्धि एवं इन्द्रियादि की सृष्टि मानी गई है ।

ऐतरेयोपनिषद् में आत्मा से अम्भादि चार लोकों की सृष्टि, पुरुष रूपी लोकपालों की रचना, इन्द्रियगोलक, इन्द्रिय एवं इन्द्रियाधिष्ठाता देवों की सृष्टि, तदनन्तर क्षुधा एवं पिपासा की उत्पत्ति, गौ एवं अश्व की सृष्टि, मनुष्य शरीर की उत्पत्ति, अन्न की उत्पत्ति तथा परमात्मा का शरीर में प्रवेश - इस प्रकार क्रमशः सृष्टि क्रम का विवेचन हुआ है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् में आत्मा से आकाशादि सूक्ष्म भूतों की उत्पत्ति, तदनन्तर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष की उत्पत्ति स्वीकार की गई है ।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्रतिपादित सृष्टि-क्रम का/ द्विविध वर्गीकरण किया जा सकता है - 1. हिरण्यगर्भ की सृष्टि ।
2. छन्द, यागादि नानाविध सृष्टि । बृहदारण्यकोपनिषद् में क्रमशः आत्मा की दूसरी सत्ता की कामना, तदनन्तर मनुष्य की उत्पत्ति, पुनः गौ बैल आदि से लेकर पिपीलिका पर्यन्त सृष्टि क्रम का विवेचन किया गया है ।

एवं समग्र रूप से कहा जा सकता है कि "तत्" संज्ञक ब्रह्म से नानाविध सूक्ष्म एवं स्थूल सृष्टि का क्रमशः विकास होता है ।

औपनिषद सृष्टि - प्रक्रिया का पौराणिक सृष्टि - प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । यद्यपि इस तथ्य की सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती कि सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्धित पुराणों का अपना मौलिक चिन्तन भी है तथापि उन पर उपनिषदों की सृष्टि -

प्रक्रिया का भी प्रतिबिम्ब है । इस दृष्टि से प्रधानतया श्वेताश्वतर, मुण्डक, तैत्तिरीय, ऐतरेय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कठ एवं ईशोपनिषदादि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं जिनके सृष्टि सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों को पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया में स्वीकार किया गया है । उक्त उपनिषदों में भी पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली श्वेताश्वतरोपनिषद है, तदुपरान्त मुण्डक, तैत्तिरीय, ऐतरेय, बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य आदि की गणना की जा सकती है ।

सृष्टि - प्रक्रिया के साथ-साथ पुराणों में सृष्टि से पूर्व की स्थिति का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह भी औपनिषद् प्रभाव से संश्लिष्ट है । अतः निर्विवाद रूप से यह कहना युक्ति - संगत है कि औपनिषद् सृष्टि - प्रक्रिया का पौराणिक सृष्टि - प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है ।

पुराणों के साथ-साथ सांख्य, शैव एवं वेदान्त प्रतिपाद्य सृष्टि-प्रक्रिया पर भी उपनिषदों की सृष्टि-प्रक्रिया का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सांख्य ने सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति को तथा निमित्त कारण पुरुष को माना है। इस दृष्टि से आत्मा (पुरुष) को सृष्टि का निमित्त कारण मानने वाले ईश, केन एवं बृहदारण्यक तथा निमित्त एवं उपादान दोनों के रूप में पुरुष (आत्मा) को मान्यता देने वाले ऐतरेय, कठ आदि उपनिषदों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सांख्य-सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया पर श्वेताश्वतर, मुण्डक एवं कठोपनिषदादि की स्पष्ट छाया है।

शैव दर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया पर श्वेताश्वतर एवं प्रश्नोपनिषद् का प्रभाव परिलक्षित होता है।

वेदान्त की सृष्टि क्रम एवं सृष्टि कारण सम्बन्धी मान्यता पर प्रायः उपनिषदों की छाया है। इस दृष्टि से लगभग सभी मुख्य उपनिषदों का प्रभाव प्रतीत होता है।

एवं निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि औपनिषद सृष्टि-प्रक्रिया ने पुराण, सांख्य, शैव एवं वेदान्त सभी पर को प्रभावित किया है।